

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

धनंजय कुमार राय

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

(2014 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं 17443)

02 अगस्त, 2023

(माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहित कुमार शाह)

विचार के लिए मुद्दा

क्या अनुशासनात्मक कार्यवाही विधि और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार की गई थी?

हेडनोट्स

याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाया गया आरोप गम्भीर है, जो सिद्ध हो चुका है। अतः ऐसी अनुशासनहीनता को हल्के में नहीं लिया जा सकता। इस प्रकार, इस न्यायालय का मत है कि याचिकाकर्ता पर आरोपों के आधार पर दी गई दण्डानुसार कार्यवाही असंगत या अनुपातहीन नहीं है। (कंडिका - 11)

अदालत ने पाया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं थी और न ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ थाते हुए कि संविधान के अनुच्छेद 226 एवं 227 के अधीन न तो साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है और न ही जांच कार्यवाही के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया जा सकता है यदि वही विधि के अनुसार की गई हो। (कंडिका- 12)

याचिका खारिज की जाती है। (कंडिका - 14)

न्याय दृष्टान्त

भारत संघ एवं अन्य बनाम पी. गुणशेखरन, (2015) 2 एस.सी.सी. 610; भारत संघ एवं अन्य बनाम दिलेर सिंह, (2016) 13 एस.सी.सी. 71

अधिनियमों की सूची

भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 और 227

मुख्य शब्दों की सूची

विभागीय जांच; प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त; अनुशासनात्मक कार्यवाही; दण्ड की समानुपातिकता; अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत न्यायिक पुनरावलोकन; अनुशासित बल का कदाचार; निलंबन और निर्वाह भत्ता

प्रकरण से उत्पन्न

दिनांक 22.09.2003 का आदेश, जो ग्रुप कमांडेंट, सी.आई.एस.एफ. द्वारा पारित किया गया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक वर्ष की अवधि हेतु वेतनमान में एक स्तर की कटौती (संचयी प्रभाव सहित) का दण्ड दिया गया तथा निलंबन अवधि के दौरान केवल निर्वाह भत्ता दिये जाने का निर्देश दिया गया।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

याचिकाकर्ता की ओर से: श्री अरुण कुमार, अधिवक्ता

प्रतिवादी/भारत संघ की ओर से: श्री नवीन कुमार सिन्हा, अधिवक्ता; श्रीमती शैल कुमार, केंद्रीय सरकारी अधिवक्ता

रिपोर्टर द्वारा हेडनोट बनाया गया: अमित कुमार मल्लिक, अधिवक्ता

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2014 का दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं 17443

=====

धनंजय कुमार राय, पिता जगदीप राय, निवासी गांव-बहादुरपुर, डाकघर-बागवा, थाना - गुलहानी, जिला-भोजपुर, वर्तमान में कांस्टेबल, राउरकेला स्टील प्लांट, उड़ीसा के रूप में पदस्थापित।

... ..याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. सचिव, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के माध्यम से भारत संघ।
2. महानिरीक्षक, केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल।
3. उप महानिरीक्षक, पूर्वी क्षेत्र मुख्यालय, सी.आई.एस.एफ. कार्यालय परिसर, बोरिंग रोड, पाटलिपुत्र, पटना-800013।
4. ग्रुप कमांडेंट, सी.आई.एस.एफ. कार्यालय परिसर, बोरिंग रोड, पाटलिपुत्र, पटना-13, बिहार।
5. प्रभारी अधिकारी, सी.आई.एस.एफ. इकाई, एफ. सी. आई. गया, जिला-गया (बिहार)।
6. सहायक कमांडेंट, सी.आई.एस.एफ. इकाई, एफ.सी.आई., दीघा घाट, पटना।

... ..उत्तरदाता/ओं

=====

उपस्थिति:

याचिकाकर्ताओं के लिए	:	श्री अरुण कुमार, अधिवक्ता
उत्तरदाता/ भारत संघ के लिए	:	श्री प्रवीण कुमार सिन्हा, अधिवक्ता
	:	श्रीमती शैल कुमार, सी. जी. सी.

=====

कोरम: माननीय न्यायमूर्ति श्री मोहित कुमार शाह

मौखिक आदेश

दिनांक: 02-08-2023

1. वर्तमान रिट याचिका 22.09.2003 को ग्रुप कमांडेंट, सी.आई.एस.एफ., बोरिंग रोड, पटना यानी उत्तरदाता सं. 4 द्वारा पारित आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है,

जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक साल के लिए वेतनमान कम करने की सजा दी गई है, जिसका संचयी प्रभाव होगा, और यह भी निर्देश दिया गया है कि याचिकाकर्ता को निलंबन अवधि के लिए निर्वाह भत्ता के अलावा कुछ भी भुगतान नहीं किया जाएगा। याचिकाकर्ता ने उप महानिरीक्षक, पूर्वी क्षेत्र मुख्यालय, सी.आई.एस.एफ., बोरिंग रोड, पटना यानी उत्तरदाता सं. 3 द्वारा 02.08.2004 को पारित आदेश को भी रद्द करने की प्रार्थना की है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील खारिज कर दी गई है। अंत में, याचिकाकर्ता ने 19.09.2007 को महानिरीक्षक, सी.आई.एस.एफ. पूर्वी क्षेत्र मुख्यालय, पटना द्वारा पारित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई है।

2. याचिकाकर्ता के अनुसार मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता को शुरू में केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (इसके बाद "सी.आई.एस.एफ." के रूप में संदर्भित) में कांस्टेबल के रूप में भर्ती किया गया था और बाद में गया में पदस्थापित किया गया था, हालांकि, दिनांक 16.01.2003 को ग्रुप कमांडेंट, सी.आई.एस.एफ., पटना द्वारा पारित आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया और फिर दिनांक 27.01.2003 को एक कारण बताओ नोटिस के साथ-साथ आरोप पत्र, जिसमें आरोप शामिल थे, याचिकाकर्ता को तामील किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता से 10 दिनों के भीतर अपना जवाब प्रस्तुत करने को कहा गया, जिसके उपरांत याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.02.2003 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। इसके बाद, दिनांक 07.03.2003 के आदेश के माध्यम से एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया, जिसने जांच आयोजित की और दिनांक 28.07.2003 को अपनी जांच प्रतिवेदन अनुशासनिक प्राधिकारी को प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सिद्ध पाया गया। अनुशासनिक प्राधिकारी ने इसके बाद, जांच प्रतिवेदन की एक प्रति संलग्न करते हुए, दिनांक 28.07.2003 को याचिकाकर्ता को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिसके बाद याचिकाकर्ता ने इसका जवाब दाखिल किया, हालांकि, याचिकाकर्ता

द्वारा उठाए गए मुद्दों और बिंदुओं पर विचार किए बिना, दिनांक 22.09.2003 के कार्यालय आदेश के माध्यम से सजा का आदेश पारित किया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने अपील दायर की, किंतु इसे भी दिनांक 02.08.2004 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इसके पश्चात, याचिकाकर्ता ने सजा के आदेश के साथ-साथ अपीलीय आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी, जिसके लिए रिट याचिका सं सी.डब्ल्यू.जे.सी. 2102/2006 दायर की गई, जिसका निपटारा दिनांक 21.02.2007 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को उचित पुनरीक्षण याचिका दायर करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई, जिसके उपरांत याचिकाकर्ता ने पुनरीक्षण याचिका दायर की, किंतु इसे भी दिनांक 19.09.2007 के आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता का नैतिक चरित्र अच्छा है और उनका सेवा करियर बेदाग रहा है, इसलिए सजा का आक्षेपित आदेश उचित नहीं है, विशेष रूप से उस कार्यवाही में जिसमें वह न तो प्रत्यक्ष रूप से और न ही अप्रत्यक्ष रूप से शामिल था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता न तो किसी दुराचार में शामिल रहा है और न ही उसे सजा की मात्रा पर सुनवाई का अवसर दिया गया है, और याचिकाकर्ता पर लगाई गई सजा, उसके खिलाफ सिद्ध हुए आरोपों की गंभीरता के अनुपात में नहीं है, इसलिए यह प्रस्तुत किया जाता है कि आक्षेपित आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं।

4. *इसके विपरीत*, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान मामले में दायर प्रतिशपथ पत्र का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत किया है कि सी.आई.एस.एफ. एक केंद्रीय सशस्त्र पुलिस बल है, जो हवाई अड्डों, परमाणु ऊर्जा विभाग की इकाइयों जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में तैनात है। यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 28.07.1994 को सी.आई.एस.एफ. में कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया था और अपनी मूलभूत प्रशिक्षण पूर्ण करने के बाद, उन्हें विभिन्न सी.आई.एस.एफ. इकाइयों में तैनात किया गया, जिसमें तत्कालीन सी.आई.एस.एफ. इकाई, एफ.सी.आई., गया शामिल है, जहां उनके खिलाफ

विभागीय कार्यवाही शुरू की गई और दिनांक 22.09.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा सजा दी गई। यह और प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ एक विभागीय जांच शुरू की गई और दिनांक 07.03.2003 के आदेश के माध्यम से एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया, जिसके बाद उक्त जांच अधिकारी ने विभागीय जांच आयोजित की।

5. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 27.01.2003 के ज्ञापन के माध्यम से आरोप पत्र तामील किया गया था, जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि जब याचिकाकर्ता एफ.सी.आई., गया में तैनात था, तब उसने दिनांक 01.01.2003 को लगभग 19:30 बजे कटारी पहाड़ी के ग्रामीणों, अर्थात् श्री राम अवतार पासवान, उनके पुत्र बिंदा पासवान और उनके दामाद वीरेंद्र पासवान के साथ झड़प में प्रवेश किया और उन पर हमला किया, जब वह बल के अन्य सदस्यों के साथ अपने घर लौट रहा था। यह भी दावा किया गया है कि जांच अधिकारी ने जांच आयोजित की और दिनांक 28.07.2003 को अनुशासनिक प्राधिकारी को जांच प्रतिवेदन प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सिद्ध पाया गया। जांच के दौरान, कुल 06 गवाहों से पूछताछ की गई और उनके बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए, साथ ही याचिकाकर्ता की उपस्थिति में 06 दस्तावेजों को भी प्रदर्शित किया गया। निरीक्षक-हरी सिंह के बयान के अनुसार, यह प्रकट हुआ है कि दिनांक 01.01.2003 को लगभग शाम 7:30 बजे कुछ नागरिकों, अर्थात् श्री राम अवतार पासवान, बिंदा पासवान और वीरेंद्र पासवान के साथ झड़प हुई थी, जिसमें याचिकाकर्ता के साथ-साथ अन्य सी.आई.एस.एफ. कर्मी, अर्थात् कांस्टेबल ए.के. सिंह, कांस्टेबल एच.आर. चौधरी और हेड कांस्टेबल आर.बी. सिंह शामिल थे। इस तथ्य को अन्य गवाहों, अर्थात् अवर-निरीक्षक बिहार पुलिस श्री एन. राम, अवर-निरीक्षक/कार्यकारी जी.पी. यादव (सी.आई.एस.एफ.), एफ.सी.आई. गया, और कांस्टेबल ए.के. तिवारी (सी.आई.एस.एफ.) एफ.सी.आई., गया द्वारा भी पुष्टि की गई है। झड़प के तथ्य को कांस्टेबल ए.के. सिंह और राम अवतार पासवान के बीच चांदौती थाना, गया में निष्पादित समझौते

द्वारा भी पुष्टि की गई है, जिसमें दोनों पक्षों ने कहा था कि दिनांक 01.01.2003 को भोजन करने के दौरान एक साधारण झड़प हुई थी और भविष्य में ऐसी कोई घटना नहीं होगी, और यदि ऐसा हुआ, तो वे इसके लिए जिम्मेदार होंगे। जांच के दौरान याचिकाकर्ता के बयान से ही यह स्पष्ट होता है कि वह उस स्थान पर मौजूद था जहां झड़प हुई थी, हालांकि उसने झड़प में अपनी संलिप्तता से इनकार किया है। यह अगला दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता का यह दावा कि केवल स्थान पर मौजूदगी को अपराध सिद्ध करने का आधार बनाया गया है, सही नहीं है और इसके विपरीत, कांस्टेबल ए.के. सिंह का बयान निश्चित रूप से याचिकाकर्ता को दोषी ठहराता है। याचिकाकर्ता की झड़प में संलिप्तता का तथ्य विभागीय जांच के दौरान सिद्ध हो गया है।

6. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने इसके बाद दिनांक 28.07.2003 को याचिकाकर्ता को जांच प्रतिवेदन की एक प्रति संलग्न करते हुए दूसरा कारण बताओ नोटिस तामील किया, जिसके बाद याचिकाकर्ता ने अपना प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया और फिर अनुशासनिक प्राधिकारी ने दिनांक 22.09.2003 के आक्षेपित आदेश द्वारा एक सुविचारित और विस्तृत आदेश पारित किया, जिसमें एक वर्ष की अवधि के लिए वेतनमान को एक स्तर कम करने की सजा दी गई, जिसका संचयी प्रभाव होगा, साथ ही यह निर्देश दिया गया कि याचिकाकर्ता को उसके निलंबन की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता के अतिरिक्त कुछ भी भुगतान नहीं किया जाएगा। इसके बाद याचिकाकर्ता ने अपील दायर की, किंतु इसे दिनांक 02.08.2004 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। वास्तव में, याचिकाकर्ता ने एक पुनरीक्षण याचिका भी दायर की थी, किंतु इसे भी दिनांक 19.09.2007 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

7. उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अगला दावा किया है कि विभागीय जांच के दौरान पर्याप्त साक्ष्य सामने आए हैं, जो यह दर्शाते हैं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप सिद्ध हो गए हैं और जांच अधिकारी के निष्कर्ष भी अभियोजन पक्ष के गवाहों के लिखित

बयानों पर आधारित हैं, इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी है कि याचिकाकर्ता को अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था, जिसका उन्होंने भी लाभ उठाया। आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता पर सजा जांच अधिकारी के निष्कर्षों के आधार पर लगाई गई है, जिसमें उनके खिलाफ लगाए गए आरोप सिद्ध हुए हैं और इसके अलावा, याचिकाकर्ता पर लगाई गई सजा उनके द्वारा किए गए अपराधों की गंभीरता के साथ पूर्णतः समानुपातिक है। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान रिट याचिका विलंब और लापरवाही के सिद्धांतों से प्रभावित है, क्योंकि यद्यपि सजा का आदेश दिनांक 22.09.2003 को पारित किया गया था, अपीलीय आदेश दिनांक 02.08.2004 को पारित किया गया था और पुनरीक्षण आदेश बहुत पहले दिनांक 19.09.2007 को पारित किया गया था, फिर भी याचिकाकर्ता ने 07 वर्षों के बाद, केवल वर्ष 2014 में, विलंब से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, अतः यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान रिट याचिका को इस आधार पर भी खारिज करने योग्य है।

8. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया। यह एक सुस्थापित कानून है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत, न तो साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है और न ही जांच कार्यवाही के निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया जा सकता है, यदि वह कार्यवाही कानून के अनुसार आयोजित की गई हो, और न ही यह न्यायालय साक्ष्यों की विश्वसनीयता/पर्याप्तता में प्रवेश कर सकता है या हस्तक्षेप कर सकता है, यदि निष्कर्ष कुछ कानूनी साक्ष्यों पर आधारित हैं, और इसके विपरीत, यह न्यायालय केवल यह विचार कर सकता है कि क्या जांच सक्षम प्राधिकारी द्वारा आयोजित की गई है और क्या यह कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार आयोजित की गई है। चूंकि वर्तमान मामले में, इस न्यायालय को अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं मिलती और न ही यह पाया जाता है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन हुआ है, इसलिए इस न्यायालय का यह मत है

कि प्रश्नगत अनुशासनिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं है। इस प्रकार, विभागीय कार्यवाही के संचालन में कोई अवैधानिकता न होने के कारण, अनुशासनिक प्राधिकारी के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

9. उक्त मामले का पहलू माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारत संघ और अन्य बनाम पी. गुनासेकरन** के मामले में दिए गए निर्णय में विचार किया गया है, जो (2015) 2 एस.सी.सी. 610 में प्रतिवेदित है, जिसके कंडिका 12 से 16, 20 और 21 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

“12. सुस्थापित स्थिति के बावजूद, यह अत्यंत चिंताजनक है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनिक कार्यवाही में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य किया है, यहाँ तक कि जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन भी किया है। आरोप / पर निष्कर्ष को अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया था और इसे केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा भी समर्थन दिया गया था। अनुशासनिक कार्यवाहियों में, उच्च न्यायालय पहली अपील का दूसरा न्यायालय नहीं है और न ही हो सकता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय को साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन में प्रवेश नहीं करना चाहिए। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि:

(क) क्या जांच सक्षम प्राधिकारी द्वारा आयोजित की गई है;

(ख) क्या जांच इसके लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार

आयोजित की गई है;

(ग) क्या कार्यवाही के संचालन में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है;

(घ) क्या प्राधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से इतर कुछ विचारों के कारण निष्पक्ष निष्कर्ष तक पहुँचने में स्वयं को अक्षम किया है;

(ङ) क्या प्राधिकारियों ने खुद को अप्रासंगिक या बाह्य विचारों से प्रभावित होने दिया है;

(च) क्या निष्कर्ष, अपने आप में, इतना पूर्णतः मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कभी भी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता;

(छ) क्या अनुशासनिक प्राधिकारी ने स्वीकार्य और महत्वपूर्ण साक्ष्य को गलत तरीके से स्वीकार करने से इनकार किया है;

(ज) क्या अनुशासनिक प्राधिकारी ने अस्वीकार्य साक्ष्य को गलत तरीके से स्वीकार किया है जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया है;

(झ) क्या तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय निम्नलिखित कार्य नहीं करेगा:

(i) साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन;

(ii) जांच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप, यदि वह कानून के अनुसार आयोजित की गई हो;

- (iii) साक्ष्यों की पर्याप्तता में प्रवेश करना;
- (iv) साक्ष्यों की विश्वसनीयता में प्रवेश करना;
- (v) हस्तक्षेप करना, यदि कुछ कानूनी साक्ष्य मौजूद हों जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं;
- (vi) तथ्य की त्रुटि को सुधारना, चाहे वह कितनी भी गंभीर प्रतीत हो;
- (vii) सजा की समानुपातिकता में प्रवेश करना, जब तक कि यह उसकी अंतरात्मा को झकझोर न दे।

14. सबसे प्रारंभिक निर्णयों में से एक, आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. श्री राम राव [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1723] में, उपर्युक्त कई सिद्धांतों पर चर्चा की गई है और निष्कर्ष इस प्रकार निकाला गया है:

“7. ... अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही में उच्च न्यायालय को एक लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच आयोजित करने वाले प्राधिकारियों के निर्णय के ऊपर अपील का न्यायालय नहीं माना जाता है: यह, यह निर्धारित करने से संबंधित है कि क्या जांच उसमें सक्षम प्राधिकारी द्वारा आयोजित की गई है, और उसमें निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, और क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं हुआ है। जहां कुछ साक्ष्य मौजूद हैं, जिन्हें जांच आयोजित करने का दायित्व सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार किया है और जो साक्ष्य तर्कसंगत रूप से इस निष्कर्ष का समर्थन कर सकते हैं कि अपराधी अधिकारी आरोप में दोषी है, वहाँ अनुच्छेद 226

के तहत रिट याचिका में उच्च न्यायालय का कार्य साक्ष्यों की समीक्षा करना और साक्ष्यों पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचना नहीं है। उच्च न्यायालय निश्चित रूप से हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय प्राधिकारियों ने अपराधी के खिलाफ कार्यवाही को नैसर्गिक न्याय के नियमों के असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन में आयोजित किया हो या जहां प्राधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से इतर कुछ विचारों के कारण निष्पक्ष निर्णय तक पहुँचने में स्वयं को अक्षम किया हो या अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होने दिया हो या जहां निष्कर्ष अपने आप में इतना पूर्णतः मनमाना और मनमौजी हो कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता, या इसी तरह के आधारों पर। लेकिन विभागीय प्राधिकारी, यदि जांच अन्यथा उचित रूप से आयोजित की गई हो, तथ्यों के एकमात्र निर्णायक हैं और यदि उनके निष्कर्ष कुछ कानूनी साक्ष्य पर आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता को अनुच्छेद 226 के तहत रिट कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।”

15. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चित्रा वेंकट राव [(1975) 2 एस.सी.सी. 557] में, सिद्धांतों पर और चर्चा की गई है, पैराग्राफ 21-24 में, जो निम्नलिखित हैं: (एस.सी.सी. पृष्ठ-कंडिका 561-63)

“21. विभागीय जांच से निपटने में अनुच्छेद 226 का दायरा इस न्यायालय के समक्ष आया है। आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. श्री राम राव [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1723] में इस न्यायालय द्वारा दो प्रस्ताव रखे गए थे। पहला, यह विचार करने में कि क्या कोई लोक अधिकारी उसके खिलाफ लगाए गए दुराचार का दोषी है, यह नियम कि अपराध को तब तक स्थापित नहीं माना जाता जब तक कि वह न्यायालय की संतुष्टि के लिए उचित संदेह से परे साक्ष्य द्वारा सिद्ध न हो, लागू नहीं किया जाना चाहिए। यदि वह नियम घरेलू जांच अधिकरण द्वारा लागू नहीं किया जाता है, तो उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका में विभागीय जांच आयोजित करने वाले प्राधिकारियों के आदेश को अमान्य घोषित करने में सक्षम नहीं है। उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के अंतर्गत लोक सेवक के खिलाफ विभागीय जांच आयोजित करने वाले प्राधिकारियों के निर्णय के ऊपर अपील का न्यायालय नहीं है। न्यायालय यह निर्धारित करने से संबंधित है कि क्या जांच उसमें सक्षम प्राधिकारी द्वारा आयोजित की गई है और उसमें निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, और क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का उल्लंघन नहीं हुआ है। दूसरा, जहां कुछ साक्ष्य मौजूद हैं जिन्हें जांच आयोजित करने का दायित्व सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार किया है और जो साक्ष्य तर्कसंगत रूप से इस निष्कर्ष का समर्थन कर सकते हैं कि अपराधी अधिकारी आरोप में दोषी है, वहाँ उच्च न्यायालय का कार्य साक्ष्यों की समीक्षा करना और साक्ष्यों पर स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुँचना नहीं

है। उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है जहां विभागीय प्राधिकारियों ने अपराधी के खिलाफ कार्यवाही को नैसर्गिक न्याय के नियमों के असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन में आयोजित किया हो या जहां प्राधिकारियों ने साक्ष्य और मामले के गुण-दोष से इतर कुछ विचारों के कारण निष्पक्ष निर्णय तक पहुँचने में स्वयं को अक्षम किया हो या अप्रासंगिक विचारों से प्रभावित होने दिया हो या जहां निष्कर्ष अपने आप में इतना पूर्णतः मनमाना और मनमौजी हो कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कभी भी उस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता।

22. पुनः, इस न्यायालय ने रेलवे बोर्ड बनाम निरंजन सिंह [(1969) 1 एस.सी.सी. 502] में कहा कि उच्च न्यायालय अनुशासनिक प्राधिकारी के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करता है जब तक कि निष्कर्ष किसी साक्ष्य द्वारा समर्थित न हो या यह कहा जा सके कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता। निरंजन सिंह मामले [(1969) 1 एस.सी.सी. 502] में इस न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय ने अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया जब उसने अनुशासनिक प्राधिकारी के उस आरोप पर निष्कर्ष में हस्तक्षेप किया कि प्रतिवादी ने 31-05-1956 को सुबह लगभग 8:15 बजे एक एयर कंप्रेसर को बंद करने के लिए मजबूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस न्यायालय ने कहा कि जांच समिति ने माना कि

दो व्यक्तियों के साक्ष्य कि प्रतिवादी ने हड़ताली समूह का नेतृत्व किया और उन्हें कंप्रेसर बंद करने के लिए मजबूर किया, इसे उसके अंकित मूल्य पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। महाप्रबंधक ने उस बिंदु पर जांच समिति के निष्कर्ष से सहमति नहीं जताई। महाप्रबंधक ने साक्ष्य को स्वीकार किया। इस न्यायालय ने कहा कि महाप्रबंधक के लिए ऐसा करना संभव था और वह समिति के निष्कर्ष से बाध्य नहीं था। इस न्यायालय ने माना कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष प्रबल होना चाहिए और उच्च न्यायालय को निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था।

23. अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र एक पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र है। न्यायालय इसका प्रयोग अपीलीय न्यायालय के रूप में नहीं करता है। निम्न न्यायालय या अधिकरण द्वारा साक्ष्यों के मूल्यांकन के परिणामस्वरूप पहुँचे गए तथ्य के निष्कर्षों को रिट कार्यवाहियों में पुनः खोला या प्रश्न नहीं किया जाता है। अभिलेख पर स्पष्ट कानून की त्रुटि को रिट द्वारा सुधारा जा सकता है, लेकिन तथ्य की त्रुटि को नहीं, चाहे वह कितनी भी गंभीर प्रतीत हो। तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, यदि यह दिखाया जाता है कि उक्त निष्कर्ष दर्ज करने में अधिकरण ने स्वीकार्य और महत्वपूर्ण साक्ष्य को गलत तरीके से अस्वीकार कर दिया है, या अस्वीकार्य साक्ष्य को

गलत तरीके से स्वीकार किया है जिसने विवादित निष्कर्ष को प्रभावित किया है, तो रिट जारी की जा सकती है। यदि तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो इसे कानून की त्रुटि माना जाएगा जिसे उत्प्रेषण रिट द्वारा सुधारा जा सकता है। न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत प्रासंगिक और भौतिक साक्ष्य अपर्याप्त या अनुचित हैं। किसी बिंदु पर प्रस्तुत साक्ष्य की पर्याप्तता और उक्त निष्कर्ष से निकाले जाने वाले तथ्य का निष्कर्ष न्यायाधिकरण के अनन्य अधिकार क्षेत्र में हैं। (देखें सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन [ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 477])।

24. वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने समस्त साक्ष्यों का मूल्यांकन किया और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुँचा। उच्च न्यायालय ऐसा करने के लिए उचित नहीं था। इस तथ्य के अतिरिक्त कि उच्च न्यायालय तथ्य के निष्कर्ष को इस आधार पर सुधार नहीं करता कि साक्ष्य अपर्याप्त या पर्याप्त नहीं है, वर्तमान मामले में अधिकरण द्वारा विचार किए गए साक्ष्य को उच्च न्यायालय द्वारा स्कैन नहीं किया जा सकता ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि कोई साक्ष्य नहीं है जो अधिकरण के इस निष्कर्ष को उचित ठहराए कि प्रतिवादी ने यात्रा नहीं की। अधिकरण ने अपने निष्कर्षों के लिए कारण दिए। उच्च

न्यायालय के लिए यह कहना संभव नहीं है कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति इन निष्कर्षों पर नहीं पहुँच सकता। उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों की समीक्षा की, साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया और फिर साक्ष्य को कोई साक्ष्य नहीं मानकर अस्वीकार कर दिया। यह वही है जो उच्च न्यायालय को उत्प्रेषण रिट जारी करने के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय नहीं करना चाहिए।”

16. इन सिद्धांतों को जीवित किंवदंती और शतायु वी.आर. कृष्ण अय्यर, न्यायमूर्ति ने हरियाणा राज्य बनाम रतन सिंह मामले में संक्षेप में प्रस्तुत किया है [(1977) 2 एससीसी 491]। उनके अतुलनीय और अनुपम अभिव्यक्तियों को उद्धृत करने के लिए:

“4. ... एक घरेलू जांच में भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत सख्त और परिष्कृत साक्ष्य नियम लागू नहीं हो सकते। सभी सामग्री जो एक विवेकपूर्ण मन के लिए तार्किक रूप से प्रमाणात्मक हैं, स्वीकार्य हैं। सुनवाई के साक्ष्य के प्रति कोई अस्वीकृति नहीं है, बशर्ते उसका उचित संबंध और विश्वसनीयता हो। यह सत्य है कि विभागीय प्राधिकारी और प्रशासनिक अधिकरणों को ऐसी सामग्री का मूल्यांकन करने में सावधानी बरतनी चाहिए और ऐसी चीजों को आसानी से स्वीकार नहीं करना चाहिए जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत कड़ाई से प्रासंगिक नहीं हैं। इस प्रस्ताव के लिए निर्णयों या पाठ्यपुस्तकों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है, हालांकि दोनों पक्षों के

विद्वान् अधिवक्ताओं ने हमें केस कानून और अन्य प्राधिकारियों के माध्यम से समझाया गया है। न्यायिक दृष्टिकोण का सार वस्तुनिष्ठता, बाह्य सामग्री या विचारों का बहिष्कार और नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन है। निश्चित रूप से, निष्पक्षता आधार है और यदि विकृति या मनमानापन, पक्षपात या स्वतंत्र निर्णय की समर्पणशीलता निष्कर्षों को दूषित करती है, तो ऐसा निष्कर्ष, भले ही वह घरेलू अधिकरण का हो, वैध नहीं माना जा सकता।”

20. समान रूप से, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय के लिए सजा की समानुपातिकता में प्रवेश करना संभव नहीं था, जब तक कि सजा न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर न दे। वर्तमान मामले में, अनुशासनिक प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रतिवादी में निष्ठा की कमी थी। निस्संदेह, सेवा न्यायशास्त्र में निष्ठा के लिए कोई मापनीय मानक नहीं हैं, लेकिन निश्चित रूप से ऐसी मूल्यांकन के लिए संकेतक मौजूद हैं। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार निष्ठा का अर्थ है “नैतिक उत्कृष्टता; ईमानदारी”। यह अपने दायरे में प्रामाणिकता, निर्दोषता, विश्वासयोग्यता, खुलापन, ईमानदारी, दोषरहितता, सत्यनिष्ठा, सदाचार, धार्मिकता, अच्छाई, स्वच्छता, शालीनता, सम्मान, प्रतिष्ठा, कुलीनता, निंदारहितता, शुद्धता, सम्मानजनकता, प्रामाणिकता, नैतिक उत्कृष्टता आदि को शामिल

करता है। संक्षेप में, यह एक मजबूत नैतिक मूल्यों के पालन के साथ उत्कृष्ट चरित्र को दर्शाता है।

21. केंद्रीय उत्पाद शुल्क के एक संवेदनशील विभाग में उप कार्यालय अधीक्षक के रूप में कार्यरत प्रतिवादी के आक्षेपित आचरण को अनुशासनिक प्राधिकारी ने निष्ठा की कमी को दर्शाने वाला माना, जो सेवा में निरंतरता को समाप्त करने की मांग करता है। इस दृष्टिकोण को केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने भी समर्थन दिया है। इसके बाद, उच्च न्यायालय के लिए सजा की समानुपातिकता में प्रवेश करना या इसे कम या भिन्न सजा के साथ प्रतिस्थापित करना संभव नहीं है। इन पहलुओं पर इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में विस्तार से चर्चा की गई है, जिसमें बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ [(1995) 6 एस.सी.सी. 749], भारत संघ बनाम जी. गनायुथम [(1997) 7 एस.सी.सी. 463], ओम कुमार बनाम भारत संघ [(2001) 2 एस.सी.सी. 386], कोयंबटूर जिला केंद्रीय सहकारी बैंक बनाम कर्मचारी संघ [(2007) 4 एस.सी.सी. 669], कोल इंडिया लिमिटेड बनाम मुकुल कुमार चौधरी [(2009) 15 एस.सी.सी. 620] और हाल का चेन्नई मेट्रोपॉलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड बनाम टी.टी. मुरली बाबू [(2014) 4 एस.सी.सी. 108] शामिल हैं।

10. जहां तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि सेवा से बर्खास्तगी की सजा कठोर है, यह न्यायालय यह पाता है कि याचिकाकर्ता एक अनुशासित बल का सदस्य है, इसलिए उससे न केवल नियमों का पालन करने की अपेक्षा की जाती थी, बल्कि उसे अपने कार्यों पर नियंत्रण भी रखना चाहिए था और उसके कर्तव्यों के निर्वहन में

किसी भी प्रकार का विचलन या उल्लंघन निश्चित रूप से बर्खास्तगी की सजा को आकर्षित करेगा और इसे न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोरने वाला नहीं कहा जा सकता, अतः सजा की मात्रा के संबंध में हस्तक्षेप का कोई दायरा नहीं है। इस संबंध में, इस न्यायालय का उल्लेख माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारत संघ और अन्य बनाम दिलेर सिंह** के मामले में दिए गए निर्णय से होगा, जो (2016) 13 एस.सी.सी. 71 में प्रतिवेदित है, जिसके कंडिका 22 से 27 नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

“22. उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि अपराधी कर्मचारी, जो एक बल का सदस्य था, बिना पूर्व अनुमति के शिविर छोड़ नहीं सकता था। इसने यह भी मत व्यक्त किया है कि जब कोई कर्मी शिविर में तैनात होता है, तो वह ड्यूटी पर न होने की अवधि में भी अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्र रूप से घूम नहीं सकता। हालांकि, जैसा कि स्पष्ट है, खंडपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि बर्खास्तगी की सजा, जो एक प्रमुख सजा है, अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा नहीं लगाई जा सकती थी। यह मत गुलाम मोहम्मद भट [(2005) 13 एस.सी.सी. 228] में स्पष्ट रूप से निर्धारित कानूनी स्थिति का उल्लेख किए बिना व्यक्त किया गया है। इस प्रकार, मूल आधार त्रुटिपूर्ण है।

23. आक्षेपित आदेश में, रिट न्यायालय ने अखिलेश कुमार से उद्धरण उद्धृत करने के बाद यह मत व्यक्त किया है कि विवाद कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अंतर्गत आता है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि एकल न्यायाधीश ने गुलाम मोहम्मद भट के निर्णय की मूल्यांकन करने का कोई प्रयास

नहीं किया, हालांकि इसे प्रथम अपीलीय न्यायाधीश द्वारा उद्धृत किया गया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय का तर्क का जोर यह था कि कानून में बर्खास्तगी की प्रमुख सजा लगाई जा सकती थी। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने बिना किसी विश्लेषण के निष्कर्ष को उलट दिया, केवल कलकत्ता उच्च न्यायालय से एक उद्धरण उद्धृत करके, जिसने इस न्यायालय की दो-न्यायाधीश खंडपीठ द्वारा गुलाम मोहम्मद भट मामले [(2005) 13 एस.सी.सी. 228] में निर्धारित अनुपात का उल्लेख नहीं किया था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष पूर्णतः अस्थिर है।

24. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि भले ही आरोप सिद्ध हो गए हों, प्राप्त तथ्यात्मक परिस्थितियों में बर्खास्तगी की सजा पूर्णतः कठोर और अंतरात्मा को झकझोरने वाली है। उनका तर्क है कि सजा असमानुपातिक है। प्रतिवादी एक अनुशासित बल का हिस्सा था। उसने बिना पूर्व अनुमति के शिविर छोड़ा, बाजार गया, शराब का सेवन किया और नागरिकों के साथ झगड़ा किया। यह स्थापित हो चुका है कि उसने बाजार में शराब का सेवन किया था, और यह भी सिद्ध हो चुका है कि उसने नागरिकों के साथ झगड़ा किया था। एक अनुशासित बल के सदस्य से इस तरह के व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, तर्क यह है कि सजा पूर्णतः असमानुपातिक है। समानुपातिकता का परीक्षण इस न्यायालय द्वारा ओम कुमार बनाम भारत संघ [(2001) 2 एस.सी.सी.

386], भारत संघ बनाम जी. गनायुथम [(1997) 7 एस.सी.सी. 463] और भारत संघ बनाम द्वारका प्रसाद तिवारी [(2006) 10 एस.सी.सी. 388] में समझाया गया है।

25. द्वारका प्रसाद तिवारी में यह माना गया है कि जब तक अनुशासनिक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा लगाई गई सजा न्यायालय/अधिकरण की अंतरात्मा को झकझोर नहीं करती, तब तक हस्तक्षेप का कोई दायरा नहीं है। जब एक अनुशासित बल का सदस्य इतना विचलित होता है और अनुचित तरीके से व्यवहार करता है जो कि अस्वीकार्य है, तो यह मानना कठिन है कि बर्खास्तगी की सजा, जैसी कि लगाई गई है, असमानुपातिक और न्यायिक अंतरात्मा को झकझोरने वाली है।

26. हम ऐसा सोचने के लिए प्रवृत्त हैं क्योंकि एक अनुशासित बल के सदस्य के रूप में, प्रतिवादी से नियमों का पालन करने, अपने मन और जुनून पर नियंत्रण रखने, अपनी प्रवृत्तियों और भावनाओं की रक्षा करने और अपनी भावनाओं को कल्पना में उड़ान न देने की अपेक्षा की जाती थी। यह मानव स्वभाव द्वारा कुछ हद तक ढील देने योग्य हल्का विचलन नहीं है। यह जनता में एक ऐसा आचरण है जिसने प्राधिकारी को यह सोचने के लिए मजबूर किया, और सही रूप से, कि व्यवहार पूर्णतः अनुशासनहीन है। प्रतिवादी ने, यदि हमें ऐसा कहने की अनुमति हो, आत्म-नियंत्रण, परिश्रम और इच्छाशक्ति की शक्ति को अनुचित दफन दे दिया है। एक अनुशासित व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है, मैथ्यू अर्नोल्ड की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करने के लिए:

“हम जब चाहें तब उस आग को नहीं
जला सकते जो हृदय में बसती है, आत्मा
फूंकती है और शांत रहती है, रहस्य में
हमारी आत्मा निवास करती है: लेकिन
अंतर्दृष्टि के समयों में किये गए कार्य
उदासी के समयों में पुरे हो सकते हैं।”

(Lines from Mathew Arnold:

“We cannot kindle when we will
The fire which in the heart resides,
The spirit bloweth and is still,
In mystery our soul abides:
But tasks in hours of insight will'd
Can be through hours of gloom fulfill'd.”)

हालांकि संदर्भ थोड़ा भिन्न है, फिर भी हमें लगा, इसे उद्धृत करना उचित है।

27. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री [दिलेर सिंह बनाम भारत संघ, 2012 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी & एच 19043] को रद्द किया जाता है और प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय बहाल किया जाता है और प्रतिवादी-वादी द्वारा दायर वाद खारिज किया जाता है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।”

11. परिणामस्वरूप, यह न्यायालय यह पाता है कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाया गया आरोप गंभीर है, जैसा कि पूर्ववर्ती कंडिकाओं से स्पष्ट किया जा सकता है, जो सिद्ध हो चुके हैं, अतः ऐसी अनुशासनहीनता को हल्के में नहीं देखा जा सकता, इस प्रकार यह न्यायालय यह पाता है कि याचिकाकर्ता पर लगाई गई सजा उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों के अनुपात से अधिक नहीं है, अतः इस मामले का यह पहलू याचिकाकर्ता के विरुद्ध तय किया जाता है।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के बाद, यह न्यायालय अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं पाता और न ही यह पाता है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन हुआ है, अतः प्रश्नगत अनुशासनिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है, विशेष रूप से इस सुस्थापित कानून के दृष्टिकोण से कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत, न तो साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है और न ही जांच कार्यवाही के निष्कर्ष में हस्तक्षेप किया जा सकता है, यदि वह कानून के अनुसार आयोजित की गई हो, और न ही यह न्यायालय साक्ष्यों की विश्वसनीयता/पर्याप्तता में प्रवेश कर सकता है या हस्तक्षेप कर सकता है, यदि कुछ कानूनी साक्ष्य मौजूद हों, जिन पर निष्कर्ष आधारित हैं, और इसके विपरीत, यह न्यायालय केवल यह विचार कर सकता है कि क्या जांच सक्षम प्राधिकारी द्वारा आयोजित की गई है और क्या यह कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार आयोजित की गई है। इस प्रकार, विभागीय कार्यवाही के संचालन में कोई अवैधानिकता न होने के कारण, अनुशासनिक प्राधिकारी के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर नहीं है, परिणामस्वरूप यह न्यायालय दिनांक 22.09.2003 के आक्षेपित सजा के आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं पाता। जहां तक दिनांक 02.08.2004 के अपीलीय आदेश का संबंध है, वह भी एक उचित और सुविचारित आदेश है, जिसने याचिकाकर्ता द्वारा

उठाए गए मुद्दों का उचित रूप से निपटारा किया है, अतः इसमें भी किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. अब, दिनांक 19.09.2007 के पुनरीक्षण आदेश की बात करें, तो वह भी किसी त्रुटि/अवैधानिकता से ग्रस्त नहीं है, क्योंकि यह भी एक सुविचारित और तर्कपूर्ण आदेश है, जो उचित मनन के बाद पारित किया गया है।

14. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को, जो पूर्ववर्ती कंडिकाओं में चर्चा की गई हैं, और उपर्युक्त कारणों के लिए विचार करते हुए, यह न्यायालय वर्तमान रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं पाता, अतः यह खारिज की जाती है।

(मोहित कुमार शाह, न्यायमूर्ति)

रिंकी/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यावहारिक, कार्यालयीय, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।